ISBN: 978-81-956774-3-6

सत्यं शिवं सुन्दरम्
Estd. 1949
Accredited Grade "A+" by NAAC

प्रो. सुधीरकुमार सक्सेना जन्मशताब्दी महोत्सव

मौखिक परंपरा

(भारतीय कला संस्कृति और साहित्य के संदर्भ में)

संपादक
प्रो. अजय अष्टपुत्रे
श्री दिपक सोलंकी

Published by
Department of Tabla
Faculty of Performing Arts
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

In association with
Commissioner of Youth Services and Cultural Activities
Sports, Youth and Culture Activities Department,
Government of Gujarat

'प्रो. सुधीरकुमार सक्सेना जन्मशताब्दी महोत्सव'

मौखिक परंपरा

Department of Tabla
Faculty of Performing Arts,
The Maharaja Sayajirao University of Baroda,
Opp. Sursagar Lake, Vadodara, Gujrat, India- 390001.

In association with

Commissioner of Youth Services and Cultural Activities
Sports, Youth and Culture Activities Department,
Government of Gujarat

मौखिक परंपरा

ISBN: 978-81-956774-3-6

Editors:
Prof. Ajay Ashtaputre
Senior Professor, Department of Tabla,
Faculty of Performing Arts,
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Shri Dipak Solanki
Assistant Professor, Department of Tabla,
Faculty of Performing Arts,
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Edition: First (16th February 2023)

Book cover designed by:
Shri Dhananjay Vekariya
Assistant Professor, Department of Tabla
Faculty of Performing Arts,
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Published by:
Department of Tabla
Faculty of Performing Arts,
Opp. Sursagar Lake, Vadodara, Gujrat, India- 390 001.
Email: head-tabla@msubaroda.ac.in

Printed by:
The Maharaja Sayajirao University of Baroda Press
(Sadhana Press)
Nr. Kirtistambh, Rajmahel Road,
Vadodara, Gujrat - 390 001

Prof. Sudhirkumar Saxena Janmashatabdi Mahotsav

(5th July 2022 to 5th July 2023)

Rajmata Shubhangini Raje Gaekwad

Chief Patron
Honorable Chancellor
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Prof. (Dr.) Vijay Kumar Srivastava

Patron
Honorable Vice-Chancellor
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Prof. Gaurang Bhavsar
Convener
Head - Department of Tabla
Dean – Faculty of Performing Arts

Dr. Kedar Mukadam
Co-Coordinator

Prof. Ajay Ashtaputre
Coordinator

Faculty of Performing Arts
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

 ISBN: 978-81-956774-3-6

अनुक्रम

क्रम	प्रकरण	पृ. सं.
1.	भारतीय संगीत के प्राचीन वाद्यों का इतिहास एवं विकास - Dr. Akashmaan	1
2.	संस्कृति, प्रकृति और आस्था : मौखिक विरासत - अनीता शुक्ल	6
3.	ताल पक्ष के मौखिक शिक्षा पद्धति में पढ़ंत का महत्व - डॉ. केदार मुकादम	13
4.	भारतीय संगीत की मौखिक परंपरा का पाश्चात्य कला-साधकों पर प्रभाव - Dr .Chirayu Shriniwas Bhole, Dr. Kedar Ravindra Mukadam, Shri Nandkishor Prabhakar Date	17
5.	आसावरी - Dr. Girish Gaikwad	20
6.	मौखिक परंपरा के परिपेक्ष में ख्याल गायकी एवं तबला संगत में अन्तर्सम्बन्ध - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन - दुष्यंत रूपोतिया, डॉ. राजेश जी. केलकर	27
7.	भारतीय अभिजात संगीत : एक गुरुमुखी विद्या - जनक जासलिया	30
8.	बड़ौदा में, शहनाई वाद्य की "गुरुशिष्य" परंपरा एवम 'बड़ौदा संस्थान' - Jay Shinde	32
9.	भारतीय ज्ञान परंपरा का विकास: 'श्रुति' और 'स्मृति' के संदर्भ में - Dhananjay Vekariya, Prof. Gaurang Bhavsar	35
10.	कथक और योग का संबंध - सुधी शाह, डॉ. प्रीति दामले	39
11.	आख्यान – एक विस्मृत साहित्य - मनीष एम. रोहित, डॉ. जितेन्द्रसिंह महेरा	44
12.	भारतीय संगीत में रियाज़ और शिक्षा - प्रो॰ रुचिमिता पाडे	52
13.	एकल तबला वादन में पढ़ंत एवं बजंत का महत्व - कृष्णात राजेंद्र माळवदे, डॉ. दिपक दाभाडे	60
14.	भारतीय कला एवं संस्कृति में गुरु शिष्य परम्परा - डॉ. अपर्णा चाचोंदिया	66
15.	तार्किक ताल के साथ हिंदुस्तानी ताल के संबंध - मौमिता चक्रवर्ती, डॉ॰ अमी पांडिया	72
16.	भारत की सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रगति में गुरु – शिष्य परम्परा का योगदान – एक विश्लेषणात्मक दृष्टि - प्रज्ञा विवेक मिश्र, डॉ॰ श्वेतकेतु ए॰ वोरा	79
17.	Devaram is an Oral Tradition in South India - Miss. Thiyagarajah Adchana, Dr.Smruti Vaghela	85

18.	Mirabai and her songs: Reflecting the Oral Tradition of India - Aditi Sharma	91
19.	Education and Riyaz in Indian Music - Akshat Jain, Jaydeep Lakum	97
20.	Oral Tradition & Dance Pedagogy in Present - Time: A Comparative Study - Ms. Ambikaa Madhoo, Dr. Preeti Damle	101
21.	Preserving Oral Tradition through Indian Dance Literature - Dr. Ami Pandya	109
22.	Materials & Manners - An integral oral part of Learning Indian Classical Music - Amit Karmokar, Swarup Hossain	116
23.	Oral Lore: Indigenous culture of Devadasis in subsequent to Guru-Shishya Parampara - Amruta Mahesh Thakkar, Dr.Smruti Vaghela	122
24.	Guru Shishya Tradition in Indian Culture - Sudani Archita Arvindbhai	131
25.	Oral tradition in Jainism given by 24 Tirthankaras - Astha J. Doshi, Ms. Dhwani Shah	135
26.	Guru Shishya Parampara - Azamali Kalavant, Dr. Kedar Mukadam	140
27.	Oral Tradition in Indian Classical Dance - Pathway to New Milestones! - Charanya Gurunathya, Dr. Ami Pandya	143
28.	Oral Tradition: The Preservative in Music - Devashree Ketkar, Ms. Dhwani Shah	152
29.	Oral tradition in Vedic period - Dhruvi K. Solanki, Ms. Dhwani Shah	159
30.	Survival of Indian Classical Dance Bharatanatyam through Oral Tradition - Ms. Dhwani Shah	164
31.	Tradition of Solo Classical Dance in Indian Sculpture - Dr. Divya J. Patel	171
32.	Tradition of North Indian Instrumental Music: An Analytical Study - Fenilkumar Soni, Dr. Vishwas Sant	181
33.	The oral tradition in the content of Vedic scriptures, classical dance, and folk art - Harshada Chavan, Dr. Smruti Vaghela	186
34.	Oral Tradition in Indian Dance - Dr. Jalpa Patel	191
35.	An Oral Tradition of Gujarat: "AKHYAN" - Jignisha Vaidya	194
36.	Guru Shishya Tradition in Indian Culture - Kamakshi Tiwari, Ms. Tripti Gupta	198

 ISBN: 978-81-956774-3-6

37. "गुरु शब्द" – The Significance and Power of Oral Traditions in India - Kartik Indoriya, Pinku Jha 203

38. Physiological Analysis an Interdisciplinary Approach to Bharatanatyam - P. M. Kumar, Prof. Dr. Leema Rose 208

39. Indian Literature and Oral Tradition - A Critical Analysis of the play 'Dance Like A Man' by Mahesh Dattani - Madhu Kewlani 212

40. Folk Music Traditions of Gujarat - Dr. Makrand Suresh Sarpotdar 220

41. Reflection of Oral Tradition in Rabindra Sangeet - Kazi Mahtab Karim, Dr. Vishwas Sant 223

42. Contribution of India's First Lady Tabla Player in the Field of Music - Dr. Chirag Solanki 230

43. Wisdom from Ages: Panchatantra an Oral Tradition - Mrs. Dyuti Pandya 241

44. The indigenous music of kerala 'Sopana Sangeeth' with Dance form 'Mohiniyattam' - Wincy Fernandez, Dr.Smruti Vaghela 245

45. Oral Tradition as reflected in Bhatnkhande Sangita Śāstra – an analytical view - Ms. Pooja Ambarishbhai Jani, Dr. Shweta Jejurkar 251

 ISBN: 978-81-956774-3-6

भारतीय कला एवं संस्कृति में गुरू शिष्य परम्परा

डॉ. अपर्णा चाचोंदिया - सहायक प्राध्यापक (नृत्य)
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय,
सागर (म. प्र.)

सारांश — भारतीय संस्कृति की विश्व में एक विशिष्ट पहचान है। ऐसी अनेकों परम्पराएं हमारे देश में युगों से चली आ रही हैं, जो विश्व के किसी अन्य देश में दृष्टिगोचर नहीं होती या फिर ऐसा कहें कि उनका व्यक्तव अलग-अलग देशों में अलग ही हो। ऐसी ही एक परम्परा हमारे देश में 'गुरू-शिष्य' परम्परा के नाम से प्रचलित है जिसका महत्व भारतवासी भली भाँति समझते हैं। एक राष्ट्र का निर्माण समाज से, और समाज का निर्माण मनुष्य से होता है। अतः राष्ट्र के विकास में मनुष्य के बुद्धि, विवेक का योगदान होता है। बिना ज्ञान के मानव जीवन व्यर्थ है। ज्ञान हमारे मस्तिष्क के बंद द्वार खोलकर हमें ज्ञानी और जागरूक बनाता है। ज्ञान को हमारे मस्तिष्क में प्रवेश करवाने का कार्य गुरू का होता है। इस तरह ज्ञान प्रदान करने वाले और ज्ञान अर्जित करने वाले के बीच एक अटूट सम्बन्ध जन्म लेता है जिसे गुरू-शिष्य का सम्बन्ध कहते हैं। गुरू-शिष्य परम्परा के ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जो इसकी प्राचीनता एवं महत्व को प्रमाणित करते हैं।

मुख्य शब्द — संस्कृति, परम्परा, युग, गुरू, शिष्य

मनुष्य योनि को सर्वोत्तम माना गया है, क्योंकि मनुष्य में बुद्धि होती है जो उसे अन्य प्राणियों अलग एवं विशिष्ट बनाती है। एक कहावत हमारे समाज में प्रचलित है 'बड़े भाग मानुष तन पायो' अर्थात् मानव शरीर मिलना अत्यंत सौभाग्य की बात है। अपनी बुद्धि विवेक से ज्ञानार्जन करके हम अपने मानव जीवन को सार्थक एवं सफल बनाते हैं। हमें अपने जीवन में अनेकों स्त्रोतों से ज्ञान की प्राप्ति होती है। हमारे ज्ञान में वृद्धि करने एवं उसे एक सही दिशा प्रदान करने का कार्य गुरू का होता है। 'गुरू' का अर्थ होता है अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला। गुरू शिष्य को अनुशासनबद्धता सिखाता है जो जीवनपर्यन्त उसे एक संतुलित और नियंत्रित व्यवहार प्रदान करती है।

भारत में गुरू के महत्व को सतयुग से भी पूर्व पहचान लिया गया था। पुराणों में एक कथा है कि सृष्टि बनने के बाद देवता तथा दानवों ने सागर-मंथन कर चौदह रत्न निकाले थे। उस समय सृष्टि में एक वर्ग

 ISBN: 978-81-956774-3-6

देवताओं का था, दूसरा दानवों का। दोनों वर्ग बहुत शक्तिशाली थे, किन्तु दोनों वर्ग गुरु के महत्व को समझते थे। अतः देवताओं ने अपना गुरु, बृहस्पति को बनाया और दैत्यों ने शुक्राचार्य जी को। दोनों गुरुओं के पास कुछ ऐसी विद्यायें थीं, जिनके कारण उनको गुरु बनाया गया।[1] यह दृष्टांत गुरु–शिष्य परम्परा की प्राचीनता सिद्ध करता है।

प्राचीनकाल से ही विभिन्न विद्याओं का प्रशिक्षण गुरु–शिष्य परम्परा के अंतर्गत दिया जाता था। शिक्षा प्राप्त करने के लिए कुछ वर्षों के लिए गुरुकुल या आश्रम में ही रहना पड़ता था। महलों में रहने वाले राजकुमारों को भी गुरुकुल में रहकर विद्या प्राप्त करना होती थी एवं वहाँ के नीति–नियमों का पालन कर एक अनुशासन में गुरु के सानिध्य में रहना पड़ता था। जहाँ निस्वार्थ भाव से गुरु, शिष्यों को विद्या प्रदान करते थे वहीं शिष्य भी पूर्ण समर्पण के साथ उस विद्या को ग्रहण करते थे। प्रशिक्षण में प्रायोगिक एवं सैद्धांतिक दोनों ही पक्ष शामिल होते थे। यदि हम कला जगत की बात करें तो वर्तमान में भी गुरु–शिष्य परम्परा अपना अस्तित्व बनाए हुए है। किसी वस्तु को देखकर, सुनकर या अन्य किसी प्रकार से जानकर मन में उठने वाले विचार ही "भाव" कहलाते हैं। आचार्यों ने इन्हीं भावों को सुन्दरता के साथ सजा संवार कर व्यक्त करने की विभिन्न प्रणालियों को "कला" कहा है। "भावाविष्करणं कला।" चित्रकार अपने चित्रों द्वारा, मूर्तिकार अपनी प्रतिमाओं के द्वारा, कवि अपनी कविताओं के द्वारा और संगीतज्ञ अपनी स्वर–लहरियों के द्वारा अपनी भावनाओं को ही तो प्रदर्शन करते हैं।[2]

सभी कलायें अंतर्सम्बन्धित होती हैं। आचार्य शारंगदेव के अनुसार –

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते"

अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य तीनों मिलकर ही संगीत कहे जाते हैं। संगीत का नाट्य से भी सम्बन्ध है क्योंकि गायन, वादन एवं नर्तन किसी नाट्य को प्रभावी एवं मनोरंजक बनाने वाली महत्वपूर्ण विधाएं हैं। संगीत एवं नाट्यकला का आदिग्रंथ नाट्य शास्त्र को माना गया है पौराणिक विचारधारा के अनुसार कला और विद्या का जन्म वेद से माना गया है। एक पौराणिक कथा है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा ने भरत को संगीत की शिक्षा दी और भरत ने उसे नाट्यशास्त्र में संकलित कर साधारण जनता में प्रचार किया। भगवान शंकर ने तांडव और पार्वती देवी ने लास्य नृत्य उसमें जोड़ दिया।[3] इस तरह स्वर्ग में ब्रह्मा जी से प्रारंभ होकर भरत

 ISBN: 978-81-956774-3-6

मुनि और भरत मुनि द्वारा उनके सौ पुत्रों को गुरु–शिष्य परम्परा के अन्तर्गत इन कलाओं का हस्तांतरण हुआ। श्रापवश भरत पुत्रों को पृथ्वी पर आना पड़ा और यहाँ पर उन्होंने ग्रहस्थ जीवन व्यतीत किया इस तरह भरत पुत्रों के साथ कलाओं का पृथ्वी पर अवतरण हुआ। ऐसे ही अनेकों प्रसंग हमें शास्त्रों में प्राप्त होते हैं जैसे भगवती पार्वती ने बाणासुर की पुत्री ऊषा को नृत्य की शिक्षा दी, ऊषा का विवाह अनिरुद्ध से हुआ तब द्वारिका आकर ऊषा ने नृत्य की शिक्षा यहाँ की स्त्रियों को प्रदान की और नृत्यकला का प्रचार–प्रसार पृथ्वी पर हुआ। अर्जुन ने स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी से नृत्यकला की शिक्षा प्राप्त की और वृहन्नला के रूप में उत्तरा के नृत्यगुरु बने। इस तरह ये उदाहरण सिद्ध करते हैं कि कैसे स्वर्गलोक से गुरु–शिष्य परम्परा का अनुसरण करती हुई कलायें भू–लोक पर स्थापित हुई, और गुरु–शिष्य परम्परा द्वारा हस्तांतरित होती हुई आज भी हमारे बीच पुष्पित एवं पल्लवित हो रही हैं। शास्त्रीय नृत्य कलाओं की शुद्धता, उसकी प्रामाणिकता एवं उसका सौन्दर्यबोध नृत्य की सही पहचान कराने की जिम्मेदारी ही 'गुरु' पर होती है। अपनी शिक्षा के द्वारा ही गुरु कलाकार को प्रतिभाशाली बना सकता है। गुरु द्वारा प्रतिभा विकसित करना कला के लिए अत्यन्त आवश्यक है तभी नृत्य की धरोहर को शिष्य सँजो सकता है व कला सुरक्षित रख सकती है।। कलाओं की उत्पत्ति से सम्बंधित सभी उद्धरण प्रत्यक्ष रूप से देवताओं से जुड़े हुए हैं। यही कारण है कि कला प्रस्तुति का उद्देश्य प्राचीनकाल में देवताओं को प्रसन्न करना था। कलाओं में अन्तर्निहित भाव भी अध्यात्म से जुड़े होते थे। युग परिवर्तन हुए और भारत देश पर विभिन्न शासकों ने शासन किया जो कि भारत के बाहर से आए थे। परिणाम स्वरूप भारत की कला, साहित्य और संस्कृति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। यदि हम मुगलकाल की बात करें तो उस कालखंड का इतना गहरा असर भारतीय संस्कृति पर हुआ जिसकी झलक अभी भी दिखाई देती है। हम प्रमाणिक तौर पर ये नहीं कह सकते कि मध्यकाल में हमारी कला संस्कृति का स्वरूप विकृत हुआ या विकसित हुआ पर ये निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि उस समय हमारी कला संस्कृति का स्वरूप परिवर्तित हुआ। इस परिवर्तन का असर गुरु शिष्य परम्परा पर भी हुआ। तब कला गुरुओं को दरबार में नियुक्त किया गया, कला प्रदर्शन का उद्देश्य ईश्वरोपासना के स्थान पर लोकानुरंजन हो गया। सभ्य परिवारों से कला का नाता टूटने लगा। कलागुरु जिस भी शासक के आश्रय में रहे उसको प्रसन्न करने के लिए अपनी कलाओं

 ISBN: 978-81-956774-3-6

में उनके गुणगान एवं अपनी कलाओं को अधिक मनोरंजक और आकर्षक बनाने के लिए उनमें चमत्कारिक प्रभाव डालने लगे। इस तरह अलग-अलग स्थानों की कलाओं में विशिष्टता आने लगी, और 'घरानेदारी' की परम्परा चलने लगी। सभी घरानों की अपनी-अपनी विशेषताएं थीं। आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण कलागुरु अपनी कला का प्रशिक्षण मुक्त हस्त से सभी को देने में संकोच करने लगे। कला प्रशिक्षण में वंश परम्परा चलने लगी थी। कलागुरु या तो अपने पुत्र-पुत्रियों को अपनी कला हस्तांतरित करते थे या अपने कुछ प्रिय शिष्यों को, जिसके कारण कला जगत में कलाओं के हस्तांतरण एवं प्रशिक्षण में सीमितता आने लगी। ये भी संभव है कि बहुत सी कलायें प्रशिक्षण के संकुचन के कारण गुरुओं के साथ ही समाप्त हो गई हों। समय परिवर्तन के साथ घरानेदारी की कसावट कुछ कम हुई एवं स्वाधीन भारत में कला गुरुओं को दरबार एवं शासकों की पराधीनता से मुक्ति मिली। स्वतंत्र भारत में संस्थागत शिक्षण प्रणाली में पाठ्यक्रम में अन्य विषयों की तरह कलाओं को भी शामिल कर लिया गया और समाज का सभ्य वर्ग भी जो कुछ कारणों से कलाओं से दूर होने लगा था पुनः कलाओं में रुचि लेने लगा। अब कला पर किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष का अधिकार नहीं रहा। संस्थागत शिक्षण प्रणाली के आ जाने के बाद भी कला जगत में गुरु-शिष्य परम्परा अनवरत चलती रही। संस्थाओं में शिक्षण प्राप्त करने के साथ भी कलाप्रेमी अपना एक गुरु सुनिश्चित करते हैं और कलाओं की तकनीकि सूक्ष्मता की शिक्षा अपने गुरु से ग्रहण करते हैं। संगीत, नृत्यादि कलाओं में गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाहन करना प्रारंभिक कलाओं से ही विद्यार्थियों को संस्कार के रूप में सिखाया जाता है ये आजीवन अपने कलागुरु का सम्मान करते हैं, प्रत्येक गुरु पूर्णिमा पर अपने गुरु का पूजन करते हैं। संस्थागत शिक्षण-प्रणाली एवं गुरु-शिष्य परम्परा में पर्याप्त अंतर है। गुरु-शिष्य परम्परा में प्राचीनकाल में गुरुकुल में ही शिष्यों के रहने की व्यवस्था होती थी जिससे प्रतिपल शिष्य अपने गुरु की निगरानी में ही रहते थे और उनकी प्रत्येक गतिविधि पर गुरु की नजर होती थी। माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों का बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में कोई हस्तक्षेप नहीं रहता था। कच्ची मिट्टी के समान बच्चों को गुरुकुल भेजा जाता था जहाँ गुरु के द्वारा विधिवत प्रशिक्षण एवं अनुशासित वातावरण में उन्हें दक्ष किया जाता था और वे एक निश्चित और सार्थक आकार ग्रहण कर लेते थे। कबीर दास जी ने कहा है –

 ISBN: 978-81-956774-3-6

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ि–गढ़ि काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट।।

अर्थात् गुरु कुम्हार के समान है और शिष्य मिट्टी के समान। जैसे कुम्हार घड़ा बनाते समय उसकी कमी को दूर करते हुए उसका निर्माण करता है अंदर से तो हाथ का सहारा देता है लेकिन बाहर से चोट मार–मारकर उसे एक निश्चित आकार देता है जिससे वह एक उपयोगी वस्तु के रूप में निर्मित हो जाता है, उसी प्रकार एक गुरु अपने शिष्य के चरित्र का निर्माण करता है उसे आकार देने में उसे कठोर भी होना पड़ता है अनुशासित और नियमबद्ध तरीके से वह अपने शिष्य के चरित्र का निर्माण करता है लेकिन अंदर से हमेशा अपने शिष्य को नैतिक समर्थन एवं सहारा देकर मजबूत बनाता है।

इस तरह गुरु शिष्य परम्परा द्वारा शिष्य के चरित्र निर्माण का दायित्व गुरु का होता था इसलिए भगवान के समान ही गुरु को पूज्यनीय माना गया है। गुरु का इतना अधिक महत्व बताया गया है क्योंकि यही हमारे ज्ञान के चक्षु खोलता है और हम संसार को समझने के लायक बन पाते हैं।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पांय।
बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोविन्द दियो बताय।।

कबीर के इस दोहे का अर्थ है कि गुरु और भगवान दोनों ही मेरे सम्मुख खड़े हैं किन्तु भगवान का परिचय करवाने या उन तक पहुँचने का मार्ग गुरु ही प्रशस्त करते हैं, इसलिए गुरु की महिमा भगवान से भी अधिक मानी गई है। भगवान ने भी जब पृथ्वी पर अवतार लिया तो उन्होंने भी गुरुकुल में रहकर गुरु से विधिवत शिक्षा प्राप्त की। श्री रामचंद्र जी के गुरु वशिष्ट, श्री कृष्ण जी के गुरु संदीपनी एवं विभिन्न विधाओं में निपुण कौरव और पांडव के गुरु द्रोणाचार्य रहे। कथक नृत्य के इतिहास में ऋषि वाल्मीकि को प्रथम कथक कहा गया है क्योंकि कथक की परिभाषा – 'कथा कहे सो कथक कहावे' के आधार पर उन्होंने ही राम–कृष्ण कथा गायन की शिक्षा प्रदान की थी। हर युग में गुरु–शिष्य के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। संस्थागत शिक्षण प्रणाली की अपनी कुछ निर्धारित सीमा रेखाएं हैं जैसे कि निश्चित पाठ्यक्रम एवं निश्चित समयावधि। इन दोनों के कारण गुरु–शिष्य के अन्तर्सम्बन्धों पर भी प्रभाव पड़ा है। गुरु का उद्देश्य निश्चित समय सीमा में पाठ्यक्रम को

 ISBN: 978-81-956774-3-6

समाप्त करना है एवं शिष्य को अधिकतम अंक प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा और अगली कक्षा में प्रवेश लेकर दूसरे गुरु से शिक्षा प्राप्त करना होती है जिसके कारण गुरु-शिष्य न होकर ये शिक्षक-विद्यार्थी की भूमिका में कुछ समय के लिए व्यावसायिक रूप से जुड़े होते हैं उनके सम्बन्धों में अधिक प्रगाढ़ता नहीं होती। कला जगत में आज भी गुरु-शिष्य परम्परा चल रही है जहां ही विद्यार्थी संस्थागत प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हों पर वे अपने गुरु का भगवान के समान ही सम्मान करते हैं।

संदर्भ

1. आजाद, पं. तीरथराम – कथक ज्ञानेश्वरी / नटेश्वर कला मंदिर, नई दिल्ली / पृष्ठ संख्या – 234
2. वाणीज, डॉ. पुरू – कथक नृत्य शिक्षा–प्रथम भाग / बिन्दु प्रकाशन जी–7 अयोध्या अपार्टमेंट 9–ए, मनोरमा गंज, इंदौर 452001 (म. प्र.) / चतुर्थ संस्करण 2002 / पृष्ठ संख्या – 01
3. श्रीवास्तव, प्रो. हरिश्चंद्र – कथक नृत्य परिचय / संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद / पृष्ठ संख्या – 16
4. बरसी, डॉ. ज्योति – अक्षरों की आरसी / मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बानगंगा, भोपाल (म.प्र.) 462003 / प्रथम संस्करण 2000 / पृष्ठ संख्या – 292